• लेख

स्त्रियों का नाट्य-लेखन

आशा

तीन पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की शोध परियोजना 'हिन्दी रंगमंच के विकास में महिलाओं का योगदान' पर शोध कार्य। दिल्ली विश्वविद्यालय के अदिति महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर। हिन्दी नाटक और रंगमंच की अध्येता।

वर्तमान हिन्दी साहित्य में महिलाओं ने कथा-साहित्य और काव्य-सृजन के क्षेत्र में ख़ासी पहचान अर्जित की है। 'स्त्री विमर्श' को हिन्दी में स्थापित करने में महिला कथाकारों की मुख्य भूमिका है लेकिन हिन्दी में नाट्य-लेखन पर जब हम नज़र डालते हैं तो पाते हैं कि यहाँ स्त्रियों का लिखा अपेक्षाकृत कम है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वतंत्रता-पूर्व और स्वतंत्रता-प्राप्ति के भी दो-तीन दशकों बाद तक महिलाओं द्वारा लिखे नाटकों का उल्लेख बहुत कम मिलता है। यह संभव है कि इस अवधि में महिलाओं की सक्रियता अन्य विधाओं के समान नाटक में भी कम ही रही हो किन्तु यह बात बिलकुल हज़म होने लायक नहीं है कि उनके द्वारा नाटक लिखे ही नहीं गए। हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम वैज्ञानिक और तार्किक इतिहास प्रस्तुत करने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास' से लेकर रामस्वरूप चतुर्वेदी कृत 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' तक की इतिहास-लेखन परम्परा और नाट्यालोचना की 1980 के दशक तक प्रकाशित ज़्यादातर पुस्तकों में महिला नाटककारों का ज़िक्र न होना इतिहासकार-विद्वानों को शंका के कटघरे में खड़ा करता है। इस दिशा में एकमात्र प्रयास दशरथ ओझा का है जिन्होंने 'हिन्दी नाटक कोश' में श्रम-साध्य कार्य करते हुए कम संख्या में ही सही, महिला नाटककारों का विवरण जुटाया है।

महिला-नाट्य-लेखन में सबसे पहले सन् 1896 में श्रीमती लाली के 'गोपीचंद' नामक नाटक का उल्लेख मिलता है, "लालीजी का 'गोपीचंद' नाटक खड़ी बोली गद्य के साथ बांग्ला, गुजराती, मराठी गीतों का मिश्रित प्रयोग है। इसमें गीतों की प्रधानता है। लाली ने अपनी भूमिका में कहा है कि उनका नाटक 'इन्दर सभा' की शैली पर नहीं रचा गया। हिन्दी में अपनी शैली पर मौलिकता के साथ नाट्य-लेखन के प्रति उनका आग्रह है। नाटक की रचना रास शैली पर हुई है।" प्रकाशित होते हुए भी प्रकाश में न आने वाले इस नाटक की कई महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। इसकी लेखिका ने तत्कालीन नाट्य-परम्पराओं से परिचित होते हुए भी उससे हटकर नए प्रयोग का प्रयास किया है। इसमें नाटक में लोकशैली का प्रयोग, नाटक की गीतात्मक विधा और गीतों में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का प्रयोग तथा पौराणिक नाटक होते हुए भी स्त्री-विमर्श का स्पर्श मिलता है। गोपीचंद की दो पत्नियाँ हैं और पति के संन्यास लेने के बाद उनका पारस्परिक सौहार्द इसके चरित्रांकन की विशिष्टता है। ग़ौरतलब है कि तत्कालीन समय में विष्णुकांत भावे की कंपनी समेत पारसी रंगमंच की तमाम कंपनियों द्वारा हिन्दुस्तानी, मराठी, गुजराती, बांग्ला आदि भाषाओं में 'राजा गोपीचंद' नाटक के खेले जाने का उल्लेख मिलता है किन्तु कहीं भी इस नाटक के लेखक का ज़िक्र नहीं है। बहुत संभावना है कि पारसी कंपनियों द्वारा मंचित उपरोक्त नाटक लालीजी का ही लिखा गया हो और कंपनियों ने अपनी सुविधा और शैली के अनुरूप फेर-बदल करते हुए इसकी प्रस्तुतियाँ की हों।

'हिन्दी नाटक कोश' में दशरथ ओझा ने सन् 1930 में बनारस से प्रकाशित नाटक 'अबला की आह' का उल्लेख किया है जिसके लेखक के आगे देहाती महिला लिखा हुआ है। संभवत: इस नाटक की रचनाकार कोई महिला ही रही हों। यह एक सामाजिक नाटक है जिसमें स्त्रियों पर व्याभिचारी दृष्टि रखने वाले पुरुषों को सबक सिखाया गया है। 'कुमारिल भट्ट' नाटक सन् 1934 में अनुरूपा देवी द्वारा लिखा गया। यह नाटक कुमारिल भट्ट के जीवन पर आधारित है। कुमारी तारा वाजपेयी द्वारा सन् 1944 में लिखित 'देवयानी' नाटक महाभारत के कच-देवयानी प्रसंग पर आधारित है जिसमें देवयानी के चरित्र को भावुक, आदर्श, महती रूप में चित्रित किया गया है।

महिला नाटककारों में महत्वपूर्ण नाम कंचनलता सब्बरवाल का है। इन्होंने लगभग दो दशकों तक नाट्य-लेखन किया। 'आदित्यसेन गुप्त' (1942) इनका ऐतिहासिक नाटक है जिसमें मगध की राजकुमारी देवप्रिया द्वारा विवाहोपरांत भी अपने भाई और उसके साम्राज्य के लिए किये गए प्रयासों का वर्णन है। नाटक बताता है कि महिलाएँ विवाह के बाद भी अपने पितृ-गृह की ज़िम्मेदारियों का वहन करने में सक्षम हैं। 'अमिया' (1949) कंचनलता सब्बरवाल का दूसरा ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक का प्रदर्शन सन् 1952 में महिला विद्यालय, लखनऊ में होने का उल्लेख मिलता है। नाटक की पृष्ठभूमि हूणों के आक्रमण के समय गुप्त-साम्राज्य से सम्बंधित है जिसमें अमिया की देश-भक्ति, व्यक्तिगत प्रेम का बलिदान आदि को व्यक्त किया गया है। इनके 'अनन्ता' (1959) नाटक की तुलना दशरथ ओझा ने जयशंकर प्रसाद के नाटक 'राज्यश्री' से की है। राजनैतिक कूटनीति और साम्राज्यवादी लिप्सा के कोलाहल में अनन्ता के एकनिष्ठ और अनन्य प्रेम को स्थापित करना इस नाटक का उद्देश्य है। कंचनलता सब्बरवाल का 'लक्ष्मीबाई' (1961) सन् 1857 के घटनाक्रम पर आधारित ऐतिहासिक नाटक है। इन्होंने समसामयिक घटनाओं पर आधारित नाटक भी लिखे। 'आँधी और तूफ़ान' (1963) ऐसा ही नाटक है जो राष्ट्र-प्रेम पर आधारित है। 1942 का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' और 1962 में हुए चीन के आक्रमण की पृष्ठभूमि में भारतीय रमणियों—माता, पत्नी, बहन के त्याग और वीर

संपर्क : आई-5/81, भू-तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110039
मो. 9871086838

NAAC Cordinator Aditi Mahavidyala Bawana, Delhi-110039
I.Q.A.C. Cordinator Aditi Mahavidyala Bawana, Delhi-110039

नटरंग

भारतीय रंगमंच का त्रैमासिक

खण्ड-२८ : अंक-१११
मार्च २०२१

संस्थापक सम्पादक
स्व. नेमिचन्द्र जैन

सम्पादक
अशोक वाजपेयी
रश्मि वाजपेयी

अतिथि सम्पादक
हिमांशु बी जोशी

Principal,
Aditi Mahavidyalaya
(University of Del
Bawana, Delhi-110

I.Q.A.C.
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

NAAC
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

विश्वभारती पत्रिका

खण्ड ७९ अंक १ | चैत्र - ज्येष्ठ, अप्रैल २०२१ - जून २०२१

विषय-सूची

इस अंक के लेखक		५
साहित्य में महामारी	*सोमा बंद्योपाध्याय*	९
आलोचक का आत्मसंघर्ष	*ए. अरविंदाक्षन*	२०
सिद्धों की चर्यागीतियों में उलटबाँसी एवं प्रतीक-योजना	*द्विजराम यादव*	२९
प्रवासी हिन्दी कविता में चित्रित भारतीय संस्कृति	*सुधा जितेन्द्र*	३९
निराला की लंबी कविताएँ : संवेदना एवं शिल्प	*किरण तिवारी*	५४
'अंधेर नगरी' : हास्य-व्यंग्य के आवरण में छिपी व्याकुलता	*मृत्युंजय सिंह*	६४
साठोत्तरी युवा कथाकार : इब्राहीम शरीफ	*रत्नेश कुमार सिन्हा*	७१
अभिमन्यु अनत की कविताएँ : अपने होने की तलाश	*अरविन्द कुमार यादव*	७९
उषा गाँगुली का रंगकर्म	*आशा*	८९
कहानी के दायरे में काशीनाथ सिंह	*अभिजीत सिंह*	१०२
उमर खैयाम की खोज : प्रसंग बांग्ला अनुवाद का (बांग्ला से अनुवाद : शकुंलता मिश्र)	*मनोज चक्रवर्ती*	११०
'राम रहस्य' में संयोग शृंगार की भाव-व्यंजना	*हरदीप सिंह*	१२३

Principal,
Aditi Mahavidyalaya
(University of Delhi)
Bawana, Delhi-110 039.

I.Q.A.C.
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

NAAC
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

उषा गाँगुली का रंगकर्म

आशा

उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में कोलकाता में बाग्ला रंगमंच और अंतिम दशकों में पारसी रंगमंच की शुरुआत हुई। बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में यहाँ हिन्दी रंगमंच आरम्भ हुआ जिसके फलस्वरूप १९०६ में 'हिन्दी नाट्य समिति' और १९१२ में 'हिन्दी नाट्य परिषद्' जैसी संस्थाएँ अस्तित्व में आईं। इन दोनों संस्थाओं ने तीस से भी अधिक वर्षों तक सोद्देश्य, सुरुचि-संपन्न नाट्य-प्रस्तुतियों द्वारा कोलकाता में हिन्दी रंगमंच की नींव रखी। १९४७ में 'तरुण संघ' अस्तित्व में आया जिसने लगभग एक दशक तक महत्त्वपूर्ण नाट्य-प्रस्तुतियाँ की। १९५५ में प्रतिभा अग्रवाल, श्यामानंद जालान जैसे रंगकर्मियों के प्रयासों से 'अनामिका' का उदय हुआ। लगभग ५० वर्षों तक 'अनामिका' की कलात्मक, सुरुचिपूर्ण, सोद्देश्य रंग-गतिविधियाँ देश-भर में निरंतर चर्चा का विषय रहीं। क्रमशः १९६३ और १९६६ में स्थापित 'संगीत कला मंदिर' और 'अदाकार' ने महत्त्वपूर्ण रंग-योग दिया। १९७३ में श्यामानंद जालान द्वारा स्थापित 'पदातिक' ने भी बेहतरीन नाट्य-प्रस्तुतियों से रंग-कला का श्रेष्ठ मानदंड उपस्थित किया। इसी क्रम में कोलकाता की हिन्दी रंग-परम्परा में उषा गाँगुली का नाम एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर के रूप में उभरकर आता है।

वर्तमान समय में 'रंगकर्मी'[१] कोलकाता की मुख्य रंग-मंडली है जिसका गठन १९७६ में स्वर्गीय उषा गाँगुली ने किया। 'रंगकर्मी' की स्थापना का उद्देश्य स्पष्ट था– कोलकाता की तत्कालीन संस्थाएं केवल आभिजात्य वर्ग को ध्यान में रखकर प्रस्तुतियाँ करती थीं। देश के विभिन्न भागों से आकर कोलकाता में बसी आम मध्यवर्गीय जनता उनकी पहुँच से बाहर थी। मनोरंजन के लिए यह वर्ग सिनेमा की तरफ मुड़ता था। इस अछूते वर्ग तक पहुँचने के लिए ही 'रंगकर्मी' की संकल्पना की गयी। "सामाजिक सचेतनता एवं प्रतिबद्धता रंगकर्मी के मूल उद्देश्यों में रही एवं प्रारंभ से ही समाज के हर वर्ग तक तात्पर्यपूर्ण एवं उपयोगी जीवन दृष्टि को पहुँचाना उसका लक्ष्य रहा। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए फैक्टरी के गेटों पर, मजदूरों एवं बस्तियों में रहने वालों के बीच रंगकर्मी ने नाटक करने का निर्णय लिया। साथ ही कार्यालयों, मिलों, बैंकों, स्कूल-कालेजों आदि में जा-जाकर टिकट बेचकर एक अहिन्दी भाषा-भाषी महानगर कलकत्ता में हिन्दी नाटकों के लिए दर्शक जुटाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। आज रंगकर्मी के दर्शकों में विभिन्न भाषा-भाषी एवं समाज के विभिन्न वर्गों के लिए लोग शामिल

Principal,
(University of Delhi),
Delhi-110 039.
I.Q.A.C.
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039
NAAC
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

हिन्दी का बाल नाटक और रंगमंच

आशा

प्रकृति और प्रक्रिया की दृष्टि से नाटक व रंगमंच सामाजिक और सामूहिक विधाएँ हैं जो अपने से जुड़े हर सदस्य—चाहे वह प्रस्तोता हो या दर्शक-हमेशा कुछ-न-कुछ 'नया' देती हैं। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है कि 'नाट्य' हर आयु और हर वर्ग के मनुष्यों के लिए लाभकारी है क्योंकि ऐसा कोई भी ज्ञान, शिल्प, योग, विद्या और कला नहीं है जो इसमें प्रयुक्त न होती हो। दृश्य और श्रव्य कलाओं के संयोजन के कारण नाटक की प्रभावकारिता असंदिग्ध है क्योंकि पढ़ी गयी चीज की अपेक्षा देखी-सुनी गयी चीज अधिक सहजता से संप्रेषित होती है। इस समाहारी, समावेशी और सम्प्रेषण की विशिष्टता के कारण ही आधुनिक युग की शुरुआत में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने नाटक को जन-जागरण का माध्यम बनाने का सतुत्य प्रयास किया था। नाटक की इसी सर्वगुण-सम्पन्नता के कारण आधुनिक युग की शुरुआत से ही बालकों के लिए भी इसे जरूरी माना गया। लगभग डेढ़ सौ साल के अपने इतिहास में बाल नाटकों और स्वतंत्रता के बाद बाल रंगमंच ने विभिन्न पड़ावों को पार करते हुए बाल-मन के अधिकाधिक निकट पहुँचने की कोशिश की है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं के समान बाल-नाटक का उद्भव भी भारतेन्दु युग से माना जाता है। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बालकों को ध्यान में रखते हुए 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की रचना की। इसके साथ ही, भारतेन्दु से प्रेरणा लेते हुए लाला श्रीनिवास दास ने बालकों के लिए 'प्रहलाद चरित' नाटक की रचना की। प्रताप नारायण मिश्र का 'हठी हम्मीर', बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन कृत 'एकाकी भारत' की गणना भी बाल-नाटकों में की जा सकती है। किन्तु भारतेन्दु के देहावसान के बाद यह धारा क्षीण हो गयी। द्विवेदी-युग में अनुवाद की प्रवृत्ति अत्यधिक थी जिसके अंतर्गत अंग्रेजी, बांग्ला जैसी भाषाओं से कतिपय बाल-नाटकों के भी हिन्दी में अनुवाद हुए। द्विवेदी युग में विद्यालयों में वार्षिकोत्सव जैसे कार्यक्रमों में नाटक प्रस्तुत किये जाने की प्रवृत्ति शुरू हो चुकी थी जिसके लिए अक्सर प्रसिद्ध कहानियों को नाट्य-रूपांतरित या अनुदित नाटकों को भी संपादित करके तैयार कर लिया जाता था। कुछ पत्र-पत्रिकाओं में इक्का-दुक्का बाल नाटक भी छपने लगे थे। 1917 में नर्मदा प्रसाद मिश्र के सम्पादन में 'सरल नाटक

NAAC Coordinator Aditi Mahavidyalaya Bawana, Delhi-110039

थी। 1930 में 'बाल सखा' पत्रिका में ... सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ किन्तु स्वतंत्रता से पहले बाल-नाटकों के क्षेत्र में ऐसा उल्लेखनीय काम नहीं हुआ जिसे उपलब्धि कहा जा सके।

सन् 1947 के बाद स्थिति किंचित् सुधरती हुई दिखाई पड़ती है। सांस्कृतिक नीति निर्माताओं ने यह बात गहराई से महसूस की कि बालकों के समुचित विकास के लिए कविता-कहानी के साथ नाटक और रंगमंच भी उपयोगी हैं। "स्वातंत्र्योत्तर काल में इस दिशा में कुछ प्रगति हुई और मासिक पत्र पत्रिकाओं में सामाजिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटक लिखे जाने लगे जो बच्चों के लिए मंच पर अभिनीत किये जाने योग्य थे। इस समय बाल नाटककारों ने तीन प्रयोजन को ध्यान में रखकर नाटक लिखे - पहला है— पाठ्य पुस्तकों के लिए, दूसरा— विद्यालय के समारोहों या राष्ट्रीय पर्वों पर खेले जाने के लिए और तीसरा— रेडियो प्रसारणों के लिए।"[1] पाठ्य-पुस्तकों की दृष्टि से शालिग्राम शर्मा, गिरीशदत्त पंत, रामकुमार सिंह, विष्णुदत्त कविरत्न, व्यथित हृदय जैसे रचनाकारों ने बाल नाटकों की रचना की किन्तु ये नाटक रंगमंचीय दृष्टि से असफल ही कहे गये। विद्यालयों के समारोहों पर प्रस्तुत किये जाने वाले नाटक अधिकांशतः राष्ट्र-प्रेम, समाज-सुधार, जन जागरूकता जैसी विषयों पर ही केन्द्रित होते थे। रेडियो पर प्रसारित होने वाले बाल नाटकों के विषय भी इसी प्रकार के होते थे। कमलेश्वर, बेगम कुदसिया जैदी, हबीब तनवीर, भगवतीशरण मिश्र, मोहनलाल गुप्त, केशवदेव वर्मा इत्यादि ने बालकों के लिए उल्लेखनीय रेडियो नाटकों की रचना की। इसके साथ ही नाटककारों ने बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर भी नाट्य-रचना आरम्भ की। डॉ। रामकुमार वर्मा के नाटक 'तैमूर की हार' तथा 'प्रतिशोध' इसी प्रकार के नाटक हैं। धीरे-धीरे बाल-नाटकों के संग्रह भी प्रकाशित होने शुरू हुए। 1957 में प्रकाशित कुदसिया जैदी का 'चचा छक्कन के ड्रामे' और केशवचंद्र वर्मा के 'बच्चों की कचहरी' जैसे रोचक बाल-नाटकों के संग्रहों में बाल-मन की निश्छलता और रोचकता से प्रस्तुत किया गया। "...छठे दशक में अकेले केशवचंद्र वर्मा ने बच्चों के नाटकों का चेहरा और मिजाज बदलने में जितनी बड़ी भूमिका निभाई, उतने बड़े बीस लेखक मिलकर भी नहीं कर पाए। साठोत्तरी बाल नाटकों को एक नई और ताजगी भरी पहचान देने में उनके प्रयोगधर्मी नाटकों का बड़ा योगदान है।"[2] इनके साथ ही श्रीकृष्ण, केशवदेव वर्मा, चंद्रप्रकाश सिंह, रामचंद्र तिवारी प्रभृति नाटककारों के बाल-एकांकियों की रचना की।

1960 के बाद बाल-नाट्य लेखन ने अच्छी गति पकड़ी। सिद्ध कुमार, विष्णु प्रभाकर, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने ऐतिहासिक-पौराणिक कथावस्तु का आधार लेते हुए बच्चों के लिए नाटक लिखे। 1962 में श्रीकृष्ण और योगेन्द्र कुमार के सम्पादन में बाईस बाल नाटकों का संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें विष्णु प्रभाकर, आनंद प्रकाश जैन, कमलेश्वर, श्रीकृष्ण, मंगल सक्सेना, गजोहर वर्मा, शान्ति भटनागर जैसे रचनाकारों द्वारा लिखित बाल एकांकियों को सम्मिलित किया गया। अभिनेयता, शिल्प, भाषा, कथ्य आदि सभी दृष्टियों से ये सफल एकांकी सिद्ध हुए। इस संग्रह को काफी प्रशंसा भी मिली। इस संग्रह के

हिंदी रंगमंच का आरंभिक स्त्री-विमर्श

डॉ. आशा

भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' आधुनिक हिंदी रंगमंच का आदि स्रोत माना जाता है। यही कारण है कि संस्कृत नाटकों से लेकर हिंदी नाटकों, मध्यकालीन और आधुनिक लोक-नाट्यों, पारसी रंगमंच, आधुनिक रंग-प्रशिक्षण में 'नाट्यशास्त्र' में उल्लिखित विभिन्न नाट्य-रूढ़ियों और अभिनय संबंधी युक्तियों का व्यवहार किसी-न-किसी रूप में मिल जाता है। किंतु स्त्रियों की रंगमंचीय भागीदारी के विषय में यह अनुसरण देखने को नहीं मिलता। यह स्थिति तब है जब 'नाट्यशास्त्र' में कहीं भी इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता कि उसके रचना-काल में नाट्य-कला के क्षेत्र में स्त्रियों का प्रवेश निषेध था। बल्कि कई स्थानों पर इस बात के पुख्ता संकेत मिलते हैं कि उस समय स्त्रियाँ रंगमंच पर सक्रिय थीं। प्रथम अध्याय में ही भरत मुनि द्वारा एक श्लोक में दिए गए वर्णन से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि सफल नाट्य-कर्म के लिए स्त्री पात्रों की उपस्थिति अपरिहार्य थी–"हे ब्राहमणों, मैंने भारती, सात्त्वती तथा आरभटी वृतियों से समाश्रित प्रयोग प्रदर्शित किया। फिर (उस प्रयोग को) तैयार कर प्रणाम कर के ब्रह्मा को इसकी सूचना दी। तब ब्रह्मा मुझसे बोले–(इस प्रयोग में) कैशिकी वृति और जोड़ दो तथा इस वृति के लिए जो उपयुक्त द्रव्य (सामग्री) अपेक्षित हो वह बताओ। उनके ऐसा कहने पर मैंने भगवान् को उत्तर दिया–हे भगवान् कैशिकी वृति जिससे संपन्न हो सके ऐसा द्रव्य दीजिए। नृत्त और अंगहारों से संपन्न तथा रस और भाव के अनुरूप व्यापार वाली, सुंदर नेपथ्य वाली तथा शृंगार रस से उत्पन्न कैशिकी वृत्ति मैंने भगवान् नीलकंठ (शिव) के नृत्य में देखी है। स्त्रियों के बिना (केवल) पुरुषों से उसका प्रयोग संभव नहीं है। तब महातेजस्वी और सर्वव्यापी ब्रह्मा ने मन के द्वारा अप्सराओं की रचना की।"[1] 'नाट्यशास्त्र' में 'नाट्य' के विभिन्न पक्षों से संबंधित जो विवरण और प्रयोग-विधियाँ हैं वे स्त्री और पुरुष– दोनों को ध्यान में रखकर ही दी गई हैं। 'नाट्यशास्त्र' की रचना से पूर्व और पश्चात् मध्यकाल तक स्त्रियों द्वारा रंग-कर्म किया जाता था। 'नीलमत्त पुराण' (अनुमानित रचना-काल 1000 ईसा पूर्व), आचार्य क्षेमेंद्र द्वारा रचित 'समयमातृका', कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' जैसे ग्रंथों के कुछ अंशों से इस बात की पुष्टि होती है कि उस समय रंगमंच पर महिलाओं की उपस्थिति रहती थी। पारंपरिक कश्मीरी लोक-नाट्य रूप 'भांड पांयुर' के रंगपुरुष मोती लाल क्यमू एक साक्षात्कार में कहते हैं–"कल्हण की 'राजतरंगिणी' और उससे भी पूर्ववर्ती संदर्भ ग्रंथ 'नीलमतपुराण' में साक्ष्य हैं कि स्त्रियाँ जीवन के हर क्षेत्र में सम्मानित थीं, प्रतिष्ठित थीं। वे दर्शन, कला, राजनीति, नगर निर्माण और युद्ध कला में ही नहीं सक्रिय मिलती हैं बल्कि नृत्य और रंगमंच, अभिनय में पारंगत थीं। महाकवि बिल्हण ने कर्णाट राज्य में जाकर जब 'विक्रमांकेदव चरितम्' लिखा उसमें उन्होंने कश्मीर देश, जिसे उसने शारदा देश कहा है, में ऐसी अनेक दक्ष स्त्रियों का उल्लेख किया है। तत्पश्चात् चौदहवीं शताब्दी में युग परिवर्तन हुआ। तोड़फोड़, बलात् धर्म परिवर्तन, सांस्कृतिक गतिविधियाँ सब प्रभावित हुईं। कलाएँ प्रभावित हुईं। परिवर्तित हुईं। स्त्रियाँ घरों में सिमट गईं। नृत्यांगनाएँ सहम गईं। उनकी जगह पुरुष-नृत्यांगनाओं (स्त्री वेशधारी पुरुष) ने लेनी शुरू की।"[2] वस्तुतः संस्कृत में अत्यंत समृद्ध रंग-परंपरा होने के बावजूद मध्यकाल में राजनीतिक-सामाजिक उथल-पुथल के कारण लोक-नाट्यों को छोड़कर रंगकर्म की मुख्यधारा क्षीण होकर समाप्तप्रायः हो गई थी जिसके कारण स्त्रियाँ भी विभिन्न सामाजिक कारणों से रंगकर्म से दूर हो गईं।

आधुनिक काल की शुरुआत में भारतेंदु हरिश्चंद्र नाट्य-कर्म की महत्ता और प्रभावशीलता को समझते हुए उसे पुनः जीवन देने का प्रयास करते हैं। वे इस कार्य में सफल भी होते हैं और हिंदी में नाटक लेखन और मंचन की एक धारा चल पड़ती है किंतु महिलाएँ इस धारा से नदारद दिखती हैं। कई-कई नाटक लिखने, अनुदित करने और उन्हें मंचीय जामा पहनाने वाले सक्रिय रंगकर्मी भारतेंदु हरिश्चंद्र भी इस विषय पर मौन हैं। उन्होंने 'नाटक वा दृश्य काव्य' निबंध में 'अथ हिंदी नाटक तालिका' के अंतर्गत 'अद्भुत चरित्र वा गृहचंडी' नामक नाटक के आगे श्रीमती लिखा है जो इस बात का संकेत करता है कि उक्त नाटक किसी महिला द्वारा लिखा गया है किंतु भारतेंदु ने स्त्रियों की रंगमंचीय भागीदारी से संबंधित कोई त्वरित या लंबित

Principal, Aditi Mahavidyalaya (University of Delhi) Bawana, Delhi-110 039.
NAAC Cordinator Aditi Mahavidyala Bawana, Delhi-110039
I.Q.A.C. Cordinator Aditi Mahavidyala Bawana, Delhi-110039

हिंदी नाटकों में गांधी

डॉ. आशा
डॉ. अनिल शर्मा

नाटक एक प्रयोगात्मक और कल्पनाशील माध्यम है जो अपने कथ्य के बूते हमेशा वर्तमान में खेला जाता है। तथ्य-आधारित या जीवनीपरक नाटकों में कल्पनाशीलता की गुंजाइश अपेक्षाकृत कम होती है, सारा दारोमदार प्रस्तुति की निर्देशकीय दृष्टि पर टिका होता है। राष्ट्रपिता के रूप में जन-मन में बसे गांधीजी के चरित्र के साथ यह गुंजाइश और भी कम है क्योंकि उनका जीवन और उनके सिद्धांत एक खुली किताब की तरह भारतीयों से परिचित है। नाटककार-निर्देशक अपनी ओर से कुछ जोड़ता भी है तो लोकतांत्रिक देश में 'अभिव्यक्ति का खतरा' मँडराना लाजिमी है। ऐसे में यह चुनौतीपूर्ण है कि एक स्थापित, महान और लोकप्रिय व्यक्तित्व पर केंद्रित नाटक को रोचक कैसे बनाया जाय जिससे दर्शक घंटा-डेढ़ घंटा बँधा रहकर देख सके। इन चुनौतियों के बावजूद हिंदी रंगकर्मी गांधीजी के प्रति श्रद्धा-सद्भाव व रंगमंचीय प्रतिबद्धता के चलते निरंतर उनके जीवन और मूल्यों के विभिन्न कोणों को अपने नाटकों के माध्यम से दर्शक/पाठक के सामने लाते रहे हैं।

गांधी जी को केंद्र में रखकर लिखे गए नाटकों में सर्वाधिक प्रचलित नाटक 'हत्या एक आकार की' है। ललित सहगल द्वारा लिखित यह नाटक गांधीजी की 100वीं जयंती पर सामने आया। इसका सर्वप्रथम प्रदर्शन दिल्ली की अभियान नाट्य-संस्था द्वारा राजेंद्रनाथ के निर्देशन में हुआ। देश-भर की नाट्य-संस्थाओं द्वारा इस नाटक का खेला जाना आज भी जारी है। बिना अंक और दृश्यों वाले इस नाटक में कुल चार पुरुष पात्र है। नाटक का घटनास्थल एक बड़ा भूमिगत कमरा है। गांधीजी की हत्या की योजना बनाने वाले चार व्यक्तियों में से एक 'शंकित' युवक हत्या के औचित्य को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। उसे समझाने के लिए अन्य तीन एक मुकदमे का नाटक करते हैं। अभियुक्त बना 'शंकित' युवक हत्या के लिए लगाये गये अभियोगों-क्रांतिकारियों को हत्यारा कहना-कभी उनकी प्रशंसा भी कर देना, इरविन समझौता, खिलाफत आंदोलन में भागीदारी, नोआखली में भारतीय झंडा उतरवा देना, पाक को पचपन करोड़ की मदद की जिद करना आदि से टकराते हुए गांधीजी की मान्यताओं के बूते पर उनका सशक्त जवाब देता है। किंतु पूर्वनिर्धारित योजना के तहत हत्या का फैसला ही सुनाया जाता है। पुरुषोत्तम अग्रवाल कहते हैं कि इस "नाटक में गांधीजी पर लगाए जाने वाले आरोप बेबाक हैं, घटनाओं के उल्लेख के साथ हैं, और गांधीजी के उत्तर भी उतने ही स्पष्ट और दो-टूक हैं। समुदाय, राष्ट्र और सारी मानवता के परस्पर संबंध, राजनीति में हिंसा की जगह, सत्य और अहिंसा के मूल्यों का महत्व इन बातों पर नाटक बहुत कुछ सोचने को मजबूर करता है।"[1] नाटकांत में गोली चलने की आवाज के साथ ही शंकित युवक का संवाद–'मूर्ख! तुमने केवल एक आकार की हत्या की है!' स्थापित कर देता है कि गांधीजी की हत्या कर देने के बावजूद उनके सिद्धांत और जीवन-दर्शन तो अमर और प्रासंगिक हैं। नाटक में महात्मा गांधी का नाम कहीं नहीं है, किंतु हर शब्द से उन्हीं की ध्वनि निकलती प्रतीत होती है। देवेंद्रराज अंकुर इस नाटक के विषय में लिखते हैं।"[2] एक तो अपने कलेवर के कारण, दूसरे कम पात्र संख्या के कारण, तीसरे नारी पात्र की अनुपस्थिति के कारण और अंततः बहुत ही कम मंचीय साधनों की सुविधा के बिना भी खेले जा सकने के कारण इस नाटक को रंगकर्मियों के बीच काफी लोकप्रियता मिली। विशेष रूप से कॉलेज के छात्रों और शौकिया नाट्य संस्थाओं के बीच इसकी माँग लगातार बनी रही।" गांधीजी की डेढ़सौवीं जयंती पर एम। के। रैना के निर्देशन में इस नाटक के कई प्रदर्शन हुए।

सुशील कुमार सिंह ने 'बापू की हत्या हजारवीं बार', 'अलख आजादी की' जैसे पूर्णकालिक नाटकों के साथ ही बच्चों के लिए भी 'बापू के नाम' एकांकी-नाटकों की रचना की। महात्मा गांधी की 125वीं जयंती पर लिखा गया 'बापू की हत्या हजारवीं बार' व्यंग्यात्मक ढंग से कहता है कि इतिहास में तो गांधीजी की हत्या केवल एक बार हुई किंतु स्वतंत्र भारत में उनके सिद्धांतों की हत्या हर-दिन, हर-पल होती रहती है। नाटक के केंद्र में पागलखाने के दो पागल व्यक्ति हैं। वहीं के एक डॉक्टर की मेज के दराज में गांधीजी की एक

I.Q.A.C.
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

NAAC
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

Principal,
Aditi Mahavidyalaya
(University of Delhi),
Bawana, Delhi-110 039

अनुक्रम

संपादकीय

नाटक

अनामदास का पोथा — हजारी प्रसाद द्विवेदी — ६
रूपांतरण : रामेश्वर प्रेम
रूपांतरकार का वक्तव्य
कारंथ जी की संक्षिप्त चिट्ठी

आलेख

विश्व रंगमंच और भारतीय नाट्य परम्परा — भारत रत्न भार्गव — ४३
प्राचीन भारतीय नाट्य परंपरा और भाषा की राजनीति — मृत्युंजय प्रभाकर — ४६
हिन्दी रंगमंच की विशिष्टता और विडम्बना — परवेज अख़्तर — ५६
रंगमंच और व्यवसायिकता — हिमांशु राय — ६२

व्यक्ति विशेष

राधेश्याम कथावाचक : कलकत्ता के वे दिन — सुधीर विद्यार्थी — ७०
कावालम नारायण पणिक्कर : निजी रंगमंच की तलाश — डॉ. एम. एस. विश्वमभरन — ७७
राजेन्द्र रघुवंशी : इप्टा के शिखर पुरुष — ज़ाहिद ख़ान — ८०

समूह विशेष

गोबरडांगा : जिसे नाटकों का गाँव कहा जाता है — जीतेन्द्र सिंह — ८८
आश्रम पैराफिन : जहाँ सात्विक नाट्यकर्म की साधना होती है — डॉ. कृष्णा महावर — ६४

छवि वीथी

समकालीन रंगमंच पर केन्द्रित — सौजन्य : नटरंग प्रतिष्ठान व सम्बन्धित संस्थाएं — ६८

रंगजगत

तीन लंबी कविता प्रस्तुतियाँ — डॉ. आशा — १०६

I.Q.A.C.
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

NAAC
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

Principal,
Aditi Mahavidyalaya
(University of Delhi)
Bawana, Delhi-110039

पारसी रंगमंच की अभिनेत्रियाँ

— डॉ. आशा

पारसी नाटक कंपनियों की अभिनेत्रियों के लिए नृत्य और गायन में पारंगत होना अपरिहार्य था। इसी के चलते मुख्य रूप से उस समय नाचने-गाने का पेशा करने वाली महिलाओं (वेश्याओं को भी) को अभिनेत्री के रूप में नियुक्त किया जाता था। नाटक देखने वाले तत्कालीन समय के अधिकांश दर्शक इन अभिनेत्रियों को उसी रूप में देखना चाहते थे जैसी कि वे वास्तविक जीवन में थीं। इसीलिए सीता-सावित्री तक की भूमिका में भी लटक-मटक दिखलाना स्वाभाविक चलन हो गया था। पारसी रंगमंच अपनी संरचना में ही अतिरंजित था। अभिनेत्रियों को भी इसी के अनुरूप कार्य करना पड़ता था। हालाँकि बाद में आने वाली कुछ अभिनेत्रियों ने इस अतिरंजना को तोड़ते हुए स्वाभाविक और संवेदनशील अभिनय की शुरुआत की।

लगभग एक सौ पचहत्तर वर्षों की दीर्घ अवधि तक भारत के विभिन्न शहरों-कस्बों की जनता पर छाये रहने वाले पारसी रंगमंच को असाहित्यिक और असभ्य कहते हुए उसका सही मूल्यांकन न करने की एक पूर्वाग्रह पूर्ण धारणा लम्बे समय तक हिंदी रंगमंच में चली। विशुद्ध रूप से मनोरंजन प्रधान और अधिकाधिक पैसा कमाने की प्रवृत्ति होने के बावजूद पारसी रंगमंच के ऐतिहासिक महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। इसीलिए डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. सोमनाथ गुप्त जैसे विद्वानों ने गहन शोध करते हुए हिंदी रंगमंच की विकास-यात्रा में पारसी रंगमंच के महत्वपूर्ण स्थान को अपनी पुस्तकों के माध्यम से रेखांकित करने की कोशिश की। इनके साथ डॉ. अज्ञात, डॉ. बलवंत गार्गी, डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. चंदूलाल दुबे जैसे रंग-चिंतकों ने भी इस दिशा में काम किया। पं. राधेश्याम कथावाचक, नारायण प्रसाद बेताब, आगा हश्र कश्मीरी जैसे नाटककारों, मास्टर फिदा हुसैन, अमृत केशव नायक, जयप्रकाश सुंदरी जैसे अभिनेताओं पर भी कुछ पुस्तकें सामने आयीं। इस सीमित सामग्री में पारसी रंगमंच में काम करने वाली अभिनेत्रियों के विषय में बहुत कम चर्चा देखने को मिलती है।

वस्तुतः हिंदी प्रदेश के अधिकांश लोक-नाट्यों के समान पारसी रंगमंच में भी शुरुआत से लेकर कई वर्षों तक स्त्री चरित्रों का अभिनय पुरुष कलाकार ही किया करते थे जिनमें बाल गंधर्व से लेकर, मास्टर फिदा हुसैन, जय सुंदरी जैसे कलाकारों ने काफी ख्याति अर्जित की थी। कहा जाता है कि उस समय के संभ्रांत परिवारों की स्त्रियाँ जय सुंदरी जैसे कलाकारों से स्त्रियोचित कुशल भाव-भंगिमाओं, आचरण-व्यवहार का प्रशिक्षण भी लिया करती थीं। "आरंभ में पारसी जनता रंगमंच पर स्त्रियों के अभिनय की घोर विरोधी थी। कैखुशरू कावरा जी ने स्त्री-जाति की स्वतंत्रता का स्वर ऊँचा करने पर भी, अभिनेत्रियों को रंगमंच पर लाने का विरोध किया था और इस संबंध में उन दिनों 'रास्त-गोफ्तार' आदि पत्रों में इस विषय पर पर्याप्त विवाद चला था।"[1] पारसी रंगमंच पर स्त्रियों को लाने का सबसे पहला प्रयास दादी भाई पटेल ने किया था। वे दो मुसलमान महिलाओं को हैदराबाद से लाये थे। पारसी थिएटर के विशिष्ट जानकार श्री वीरचंद धरमसी, सत्यदेव त्रिपाठी को दिए गए एक साक्षात्कार में बताते हैं कि 1873 में पारसी थिएटर के दादी भाई पटेल पहली बार मुंबई से बाहर हैदराबाद में अपनी कंपनी का टूर लेकर गए। इस टूर से आते समय दादी पटेल चार गाने वाली अभिनेत्रियों को भी साथ लेकर आए और उन्हें मंच

NAAC
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

323

Principal
Aditi Mahavidyalaya
(University of Delhi)
Bawana, Delhi-110 039.

अनुक्रम

गगनांचल
वर्ष 44, अंक 2, मार्च-अप्रैल 2021

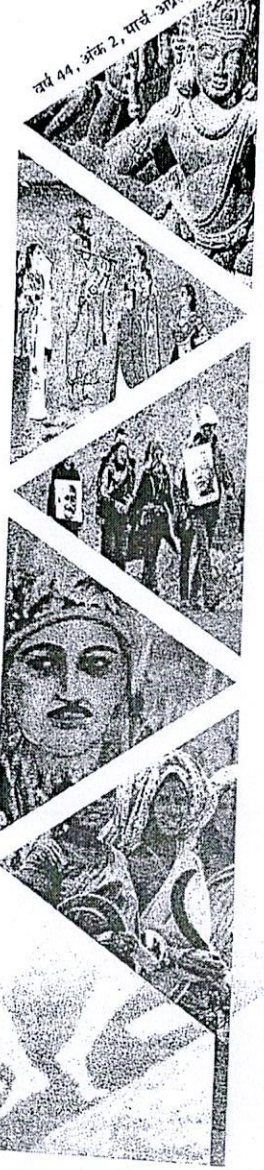

संपादकीय
3 भाषा का प्रश्न और पत्रकारिता
दिनेश कुमार पटनायक

समसामयिक
4 रामराज बैठे त्रैलोका
डॉ. आशीष कंधवे

परिचर्चा
5 सुसंस्कृत, संपन्न एवं आत्मनिर्भर भारत
पी. लल्लन प्रसाद

साहित्य की विधाएँ
10 भारतीय साहित्य में नीति और वृंद-सतसई
डॉ. प्रेम सिंह

कहानी
14 मिमरन आंटी
अंजना वर्मा
18 इन्द्रधनुष
रोचिका अरुण शर्मा

आलेख
22 सांस्कृतिक मूल्यों की युगानुरूप व्याख्या और हिंदी कविता
अंजना भाटिया
26 आदिवासी जन-जीवन का 'पार' कहाँ
डॉ. दीपक कुमार पांडेय

विमर्श
30 गाँधी की सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रवाद
राजीव गुप्ता
35 पारसी रांगमंच की अभिनेत्रियाँ
डॉ. आशा

यात्रा-वृत्तांत
41 भारत और आर्मेनियाई समुदाय
माने मकर्तच्यान (आर्मेनिया)

संस्मरण
46 जन आंदोलन की 'कर्मभूमि'
डॉ. हरीन्द्र कुमार
50 संत सहजोबाई का काव्य-मर्म
आलोक कुमार पाण्डेय

साहित्यालोचन
54 नज़ीर अकबराबादी की भाषा और लोक-रंग
डॉ. संगीता राय

पुस्तक समीक्षा
59 ध्रुवस्वामिनी नाटक में इतिहास और कल्पना
डॉ. शैलजा

काव्य-धारा
64 आज की कविता
हेमंत कुकरेती

आंचलिक साहित्य
66 अखबारी हिंदी का बदलता स्वरूप
डॉ. आलोक रंजन पांडेय

कथा-वार्ता
72 नफरत से मुहब्बत तक का सफर
अर्चना चतुर्वेदी

साहित्य समाचार
74 डॉ. पुष्पलता
75 इंजी. आशा शर्मा
76 खेमकरण 'सोमन'
58 मृणाल आशुतोष

साहित्य-वृत्त
77 हिंदी विदेशी भाषा शिक्षा में 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना नवाचार की आवश्यकता
द्विवेदी आनंद प्रकाश शर्मा

पुस्तक समीक्षा
82 समीक्षाएँ चार पुस्तकों की
डॉ. कमल किशोर गोयनका

साहित्य-वृत्त
85 संजय पंकज
86 गरिमा सक्सेना
86 अलका दूबे
87 अशोक सिंह
88 सत्या शर्मा 'कीर्ति'
89 शोभा त्रिपाठी
90 गीतांजलि कालरा
91 साहित्यालोचन

I.Q.A.C
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

324

ISSN 2278 - 0327

एक थे आग़ा हश्र कश्मीरी

डॉ. आशा
हिन्दी विभाग
अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
drasha.aditi@gmail.com

डॉ. अनिल शर्मा
हिन्दी विभाग
जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य) दिल्ली विश्वविद्यालय
anilsharma.zhc@gmail.com

हिन्दी नाटक और रंगमंच के इतिहास में पारसी रंगमंच को अश्लील-असंस्कारी-अमर्यादित-अतिरंजित कहकर उसके अस्तित्व को सिरे से खारिज कर देने का चलन रहा है। यह सही है कि पारसी रंगमंच अपनी प्रकृति में विशुद्ध व्यावसायिक था किन्तु रंगमंच के इतिहास में इसके ऐतिहासिक महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. सोमनाथ गुप्त जैसे विद्वानों ने गहन शोध करते हुए हिन्दी रंगमंच की विकास-यात्रा में पारसी रंगमंच को एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में रेखांकित किया है। पारसी रंगमंच की नाटककार-त्रयी- पं राधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद बेताब और आग़ा हश्र कश्मीरी ने अपनी-अपनी सीमाओं के बावजूद पारसी रंगमंच की निरे मनोरंजन की प्रवृत्ति को युगानुरूप राष्ट्र-समाज-संस्कृति की ओर भी उन्मुख किया।

आग़ा हश्र कश्मीरी पारसी रंगमंच के प्रमुख नाटककारों में से एक हैं। कहा जाता है कि सन् 1868 में आग़ा हश्र कश्मीरी के पिता गनीशाह आग़ा ने कश्मीर से बनारस में आकर शालों का व्यापार शरू किया था। परिवार बनारस में ही बस गया। 3 अप्रैल (कई विद्वान् यह तिथि 1 और कई 4 भी मानते हैं) 1879 में गनीशाह आग़ा के घर सैयद मुहम्मदशाह आग़ा का जन्म हुआ। इन्होंने बनारस के उस समय के प्रतिष्ठित जयराम स्कूल से शिक्षा ग्रहण की। आगा हश्र का घर और जयशंकर प्रसाद की सूंघनी साहू की दूकान एक ही मोहल्ले में थी। आग़ा हश्र का व्यक्तिगत जीवन - विवाह, संतान आदि के बारे में प्रचलित विभिन्न अपवादों के समान ही तत्कालीन आलोचकों और नाटककारों ने इनके नाट्य-लेखन के विषय में कई तरह के भ्रम फैलाये कि वे किसी अन्य से शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद करवाकर अपने नाम से छपवा लेते हैं। उर्दू या हिन्दी किसी भी भाषा पर हश्र की पकड़ नहीं है! - इन आरोपों-अपवादों का मक्कमल जवाब हश्र अपने रचना-कर्म के नैरन्तर्य से देते रहे। आगा हश्र कश्मीरी ने हिन्दी में 14 नाटक लिखे. उर्दू में भी इतनी ही संख्या में नाटक लिख चुके थे जिनमें से अधिकांश शेक्सपियर के नाटकों का भावानुवाद थे। पं नारायण प्रसाद की प्रेरणा से हश्र ने हिन्दी में नाटक लिखने शुरू किये। हिन्दी, उर्दू के अलावा अंग्रेज़ी, बांग्ला और मराठी भाषाओं पर भी हश्र की अच्छी पकड़ बतायी जाती है।

अपनी रंग-यात्रा के आरंभिक दौर में आग़ा हश्र कश्मीरी ने उर्दू नाटक लिखे किन्तु उनकी वास्तविक प्रसिद्धि हिन्दी-हिन्दुस्तानी में नाट्य-लेखन से ही हुई। अल्फ्रेड कंपनी, द न्यू अल्फ्रेड, अदेशिर ठूठी की कम्पनी, इम्पीरियल कम्पनी (बम्बई), मेडन थिएटर(कलकत्ता) के लिए दर्जनों नाटक लिखे, जो इन कंपनियों द्वारा खूब खेले गये और मोटी कमाई का साधन बने। 'ड्रामानिगार' (हश्र स्वयं को लेखक की जगह ड्रामानिगार कहलवाना पसंद करते थे) के साथ कंपनियों के गलत व्यवहार से तंग आकर आग़ा हश्र ने स्वयं शेक्सपियर थियेट्रिकल कम्पनी (लाहौर,1913) बनाई। इस कंपनी के अंतर्गत उन्होंने 'यहूदी की लड़की', 'बिल्वमंगल उर्फ सूरदास', 'वन देवी' जैसे नाटकों का लेखन-निर्देशन किया। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने आग़ा हश्र कश्मीरी के नाट्य-लेखन के तीन चरण माने हैं - पहला चरण 1900-1910 का है जिसमें उन्होंने अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध तीन नाटकों- 'किंग लियर', 'रिचर्ड तृतीय' और 'मेजर फार मेजर' के क्रमश: 'सफेद खून', 'सैदे-हवस' और 'शहीदे-नाज़' का हिन्दुस्तानी में नाट्य-रूपांतरण किया। दूसरे चरण, 1910-1916 आग़ा हश्र ने हिन्दी-उर्दू की मिली-जुली संस्कृति और भाषा में 'ख्वाब-हस्ती', 'खूबसूरत बला', 'सिल्वर किंग', 'यहूदी की लड़की', 'सूरदास', 'बनदेवी', 'शामे-जवानी', 'खुदपरस्त' जैसे नाटक लिखे। तीसरा चरण, जो आग़ा हश्र के नाट्य-लेखन का महत्वपूर्ण दौर कहा जाता है, 1917 में कलकत्ता में जे.एफ. मेडन थिएटर शुरू हुआ जिसमें हश्र ने 'वनदेवी' (भारत रमणी), 'मधुर मुरली', 'भागीरथ-

अनुक्रम

पवन कुमार सिंह : हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में प्रतीक योजना 5

महावीर सिंह वत्स : संस्कृति का तलघर 11

गीता कौशिक : 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' : एक प्रयोगात्मक उपन्यास 17

कुसुम नेहरा : 'आपका बंटी' में कामकाजी महिला का संघर्ष 23

अमिता तिवारी : नारी अस्मिता और 'कस्बोई सिमोन' 28

रश्मि शर्मा : मित्रो मरजानी का कथा-शिल्प 33

राजवीर वत्स : नारी स्वतन्त्रता और 'रुकोगी नहीं राधिका' 38

अनिल शर्मा : 'उसका बचपन' का यथार्थ 43

उदय कुमार यादव : कृष्णा सोबती के 'जिन्दगीनामा' में मनोविज्ञान 48

आशा : दीवार में रहने वाली खिड़की का जादुई यथार्थ 52

कामिनी : साम्प्रदायिकता और 'सूखा बरगद' 57

अमित कुमार सिन्हा : कुन्ती की अन्तर्वेदना और संघर्ष 61

राहुल कुमार : फणीश्वरनाथ रेणु की क्रान्तिकारिता 67

अरमान अंसारी : फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य, आँचलिकता और इतिहास चेतना 72

सुशील कुमार भारद्वाज : शिक्षा में राजनीति का घिनौना स्वरूप 78

आशीष कुमार : जीवन बोध की वास्तविक परख और हिन्दी दलित उपन्यास 84

बेबी कुमारी : 'रानी लचिका' में मियक व यथार्थ 90

मनोज कुमार : नागार्जुन के उपन्यासों में अप्रस्तुत-विधान 95

प्रीति सिंह : अमानवीय क्रूरता का दंश झेलता किन्नर जीवन 101

Principal
Aditi Mahavidyalaya
University of Delhi
Bawana, Delhi-110039

NAAC
Coordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

दीवार में रहने वाली खिड़की का जादुई यथार्थ

आशा

विनोदकुमार शुक्ला जीवन के सादे सौन्दर्य को अनूठे शिल्प में पिरोने वाले रचनाकार हैं। 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' इनका बहु-चर्चित उपन्यास है। तमाम तरह के वादों और दर्शनों से अलग यह उपन्यास रोजमर्रा के अत्यन्त साधारण शब्दों को काल्पनिक ढंग से पकड़ते हुए सहजता से बात कहता दिखता है। कोई गूढ़ गम्भीर सन्देश इसमें नहीं है। अपनी रचनाओं की इसी सादगी के सन्दर्भ में विनोद कुमार शुक्ला लिखते हैं—"मैं कोई उस तरह का सन्देश नहीं देता। मेरे पास उस तरह से बताने के लिए कुछ भी नहीं है। मुझे लगता है कि मेरी कोई जिम्मेदारी अगर बनती है तो वो मनुष्य होने की जिम्मेदारी है। मेरा अत्यन्त सामान्य जीवन रहा। कोई उस तरह की बड़ी घटना नहीं हुई। दुख तो मुझको भी मिला है जीवन जीने में, लेकिन मैं अपने दुख को बहुत छोटा मानता हूँ। मैं अपनी रचनाओं में उसी आशा के साथ खड़ा हूँ।"[1] 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' विभिन्न अभावात्मक परिस्थितियों में भी जी भरकर जीने आम इंसान को सहज धरातल पर दिखाता है। विष्णु खरे इस उपन्यास के कथानक के विषय में लिखते हैं "विनोद कुमार शुक्ल के इस उपन्यास में कोई महान घटना, कोई विराट संघर्ष, कोई गूढ़ सत्य, कोई उद्देश्य या सन्देश नहीं है क्योंकि इसमें यह जीवन, जो इस देश की जिन्दगी है जिसे किसी अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में निम्न मध्यवर्गीय कहा जाता है, इतने खालिस रूप में मौजूद है कि उसे किसी विश्लेषण की जरूरत नहीं है।"[2]

राजुर प्रसाद एक छोटे से कस्बे के विद्यार्थियों की बहुत कम संख्या वाले महाविद्यालय में गणित के प्राध्यापक हैं। वे महाविद्यालय से आधे घण्टे की दूरी पर बसी बस्ती के बाहरी इलाके में एक कमरे के घर में तीन साल महीना किराये पर रहते थे, जिसमें एक दीवार अलग था, इसी के लिए अलग से किराया देना पड़ता था और उस पर ताला भी लगाकर रखना पड़ता था। राजुर प्रसाद प्रतिदिन रेलगाड़ी से महाविद्यालय आना जाना करते थे किन्तु हाल फिलहाल 'शायद' से आने जाने लगे हैं। राजुर प्रसाद विवाहित थे। उनकी पत्नी का नाम सोनसी था। इन दो मुख्य पात्रों के इर्द गिर्द बुने गये 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' उपन्यास में विशिष्ट प्रकार की कल्पना का जादुई संसार जिसे आलोचकों ने 'मैजिक रियलिज्म' कहा है देखने को मिलता है जो पहले पहल पाठक को अटपटा लगता है लेकिन धीरे धीरे वह उससे सम्मोहित होता जाता है। फैण्टेसी के प्रयोग के जरिये विभिन्न मध्यवर्गीय यथार्थ इस उपन्यास में चित्रित हुआ है।

(PEER REVIEWED/REFEREED JOURNAL)
साहित्यिक ई–पत्रिका
अपनी माटी
ISSN 2322-0724 Apni Maati
सम्पादक जितेन्द्र यादव ई मेल apnimaati.com@gmail.com

आलेख:वर्तमान सन्दर्भों में तुलसी-काव्य की प्रासंगिकता/ डॉ. आशा

आलेख, डॉ नीलम राठी, तुलसीदास, भक्तिकाल, रामचरित मानस, विशेषांक, शोध, सगुन भक्ति,

वर्तमान सन्दर्भों में तुलसी-काव्य की प्रासंगिकता

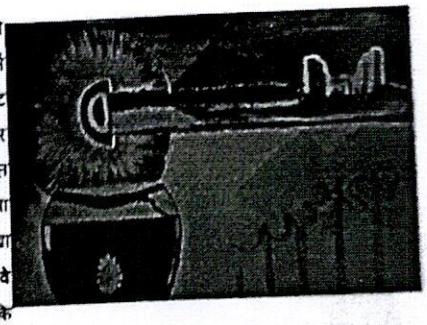

तुलसीदास भारत के लोकप्रिय कवि हैं. उन्होंने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के प्रेरक और उज्जवल पक्षों को प्रेरणादायक ढंग से प्रस्तुत किया है. इस रूप में काव्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्वों को समझने की दृष्टि से तुलसी-काव्य सर्वाधिक समर्थ और सशक्त साधन है. हिन्दी और हिंदीतर अनेक विद्वानों द्वारा तुलसी-काव्य पर विचार, व्याख्या और विश्लेषण प्रस्तुत किये जा चुके हैं. तुलसी-काव्य के मर्म को समझने और समझाने की यह यात्रा निरंतर जारी है किन्तु यह भी सत्य है तुलसी-काव्य पर अभी तक जितना लिखा और कहा जा चुका है, वह अपर्याप्त है. "तुलसी की पहुँच घर-घर में है, या वे व्यापक समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं तो इसका मुख्य कारण यह है कि गृहस्थ जीवन और आत्म निवेदन इन दोनों अनुभव-क्षेत्रों के वे बड़े कवि हैं. 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' के युग्म में जैसे सब कुछ सिमट आया हो." (पृष्ठ-49, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरुप चतुर्वेदी) वस्तुतः तुलसीदास के सम्पूर्ण कृतित्व में अब भी वह प्रेरक और सम्मोहिनी शक्ति विद्यमान है जो पहले लिखे और कहे गए से आगे बढ़कर सोचने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए पाठकों और आलोचकों को निरंतर प्रेरित करते हुए सक्रिय बनाए रखे हुए है. निश्चित रूप से, तुलसीदास की काव्य-सरिता में ऐसे अनेक अमूल्य मोती छिपे हुए हैं जिनकी थाह मर्मज्ञ गोताखोर-मनीषियों को अभी तक नहीं लग सकी है. तुलसीदास के इसी गुण ने इतने वर्षों बाद भी भारतीय मानस-पटल पर अपना स्थान अक्षुण्ण रखा हुआ है. इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसीदास के विषय में बड़े आदर के साथ लिखा है - "यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिन्दी का सबसे बड़ा कवि कौन है तो उसका एक मात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत-हृदय, भारती-कंठ अक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास." (पृष्ठ–175, गोस्वामी तुलसीदास, रामचन्द्र शुक्ल)

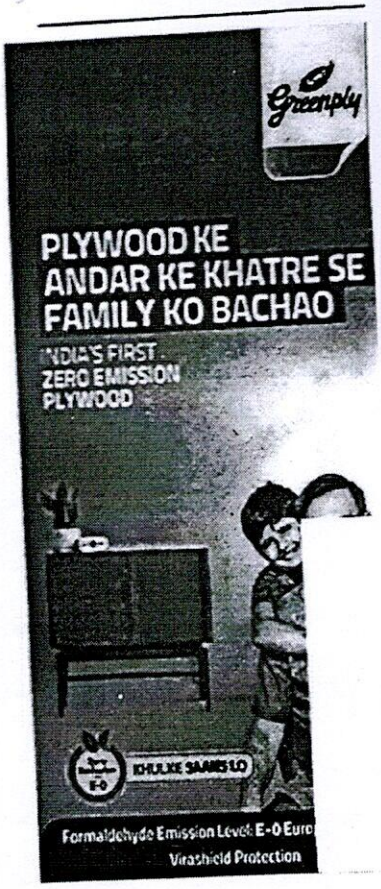

Principal,
Aditi Mahavidyalaya
(University of Delhi)
Bawana, Delhi-110039

NAAC
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

I.Q.A.C.
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

संस्कृत-काल में रंगमंच पर महिलाओं की उपस्थिति

(विशेष सन्दर्भ भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' व धनञ्जय कृत 'दशरूपक')

डॉ. आशा शर्मा

हिन्दी रंगमंच के इतिहास में भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' रंगमंच का आदि प्रामाणिक ग्रन्थ है जिसके आधार पर प्राचीन काल में रंगमंच की कला और उसके प्रयोग के विषय में जानकारी मिलती है। भरत मुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' का अनुमानित रचना-काल ५०० ईसा पूर्व के आसपास माना जाता है। रंगमंच के मर्मज्ञों का मानना है कि भरत के समय से पूर्व ही रंगमंच की परम्परा चली आ रही होगी तभी इसके महत्त्व को देखते हुए भरत मुनि के मन में इसे सिद्धान्त रूप में बाँधने का विचार आया होगा। आश्चर्य की बात है कि इस ग्रन्थ में कहीं भी इस तरह का उल्लेख नहीं मिलता जिससे यह प्रमाणित हो कि 'नाट्यशास्त्र' के रचना-काल में रंगमंच पर स्त्रियों का अभिनय करना निषेध था। बल्कि कई स्थानों पर भरत मुनि के वर्णन से यह प्रमाणित होता है उनके समय में स्त्रियाँ रंगमंच पर सक्रिय थीं।

भरत मुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' में महिलाओं की उपस्थिति सम्बन्धी प्रमाण देने से पहले 'नाट्यशास्त्र' से इतर कुछ स्रोत दिए जा रहे हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि 'नाट्यशास्त्र' के रचना-काल से पहले और बाद में मध्यकाल तक स्त्रियों द्वारा रंग-कर्म किया जाता था। 'नीलमत्त पुराण' (अनुमानित रचना-काल १००० ईसा पूर्व) में तत्कालीन कश्मीर की संस्कृति और प्रदर्शन कलाओं के अन्तर्गत नाट्य-गतिविधियों के उल्लेख में इस बात के संकेत हैं कि स्त्रियाँ रंगमंच के कार्यों में भागीदारी करती थीं। इसके बाद आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा रचित 'समयमातृका'—जो एक सामाजिक-व्यंग्य रूप है, उस ग्रन्थ के कुछ अंशों से इस बात की पुष्टि होती है कि उनके समय में भी रंगमंच पर महिलाओं की उपस्थिति रहती थी। इसके अलावा कश्मीरी कवि बिल्हण ने भी एक स्थान पर न केवल स्त्रियों द्वारा निभाई गयी भूमिका की चर्चा की है बल्कि रम्भा का चरित्र निभाने वाली स्त्री की विशेष प्रशंसा की है।

उपरोक्त तथ्य की पुष्टि पारम्परिक कश्मीरी लोक-नाट्य रूप 'भांड पाथेर' के रंगपुरुष मोती लाल क्यूम ने भी एक साक्षात्कार में की है, वे कहते हैं—"कल्हण की 'राजतरंगिणी' और उससे भी पूर्ववर्ती सन्दर्भ ग्रन्थ 'नीलमत्त पुराण' में साक्ष्य हैं कि स्त्रियाँ जीवन के हर क्षेत्र में सम्मानित थीं, प्रतिष्ठित थीं। वे दर्शन, कला, राजनीति, नगर निर्माण और युद्ध कला में ही नहीं सक्रिय मिलती हैं बल्कि नृत्य और रंगमंच, अभिनय में पारंगत थीं। महाकवि विल्हण ने कर्णाट राज्य में जाकर जब 'विक्रमांकेदव चरितम्' लिखा उसमें उन्होंने कश्मीर देश, जिसे उसने शारदा देश कहा है, में ऐसी अनेक दक्ष स्त्रियों का उल्लेख किया है। तत्पश्चात् चौदहीं शताब्दी में युग परिवर्तन हुआ। तोड़फोड़, बलात् धर्म परिवर्तन, सांस्कृतिक गतिविधियाँ सब प्रभावित हुईं। कलाएँ प्रभावित हुईं। परिवर्तित हुईं। स्त्रियाँ घरों में सिमट गईं। नृत्यांगनाएँ सहम गईं। उनकी जगह पुरुष-नृत्यांगनाओं (स्त्री वेशधारी पुरुष) ने लेनी शुरू की।" (पृष्ठ ७७, रंग प्रसंग-४१)

इसी प्रकार का मत नाटककार जयशंकर प्रसाद का भी है। अपने 'रंगमंच' नामक निबन्ध में भारत में रंगमंच की कला के स्वरूप बताते हुए वे लिखते हैं—"नाट्यमन्दिर में नर्तकियों का विशेष प्रबन्ध रहता था। जान पड़ता है कि रेचक, अंगहार, करण और चारियों के साथ पिंडीबंध अथवा सामूहिक नृत्य का आयोजन रंगमंच में होता था। अति प्राचीन काल में भारतवर्ष के रंगमंच में स्त्रियाँ नाटकों को सफल बनाने के लिए आवश्यक समझी गईं। केवल पुरुषों के द्वारा अभिनय असफल होने लगे तब रंगोपजीवना अप्सराएँ रंगमंच पर आईं। कहा गया है—

अनुक्रम

सम्पादकीय ५

नाटक

मेमरी लेन — *चिनु मोदी, अनु. - रानू मुखर्जी* — ७

प्रलेखन

रंग-स्मरण : दिल्ली आर्ट थियेटर — *सौजन्य - नटरंग प्रतिष्ठान* — २८

महिला रंगकर्मी

संस्कृत रंगमंच में महिलाओं की उपस्थिति — *डॉ. आशा शर्मा* — ४५
हिन्दी में महिलाओं का नाट्य-लेखन — *डॉ. दत्तात्रय मोहिते* — ५१
नाटकवाली — *डॉ. दीपा दत्तात्रय कुचेकर* — ६३

छवि वीथी

(दिल्ली आर्ट थियेटर और महिला नाटककार पर केन्द्रित) — *सौजन्य - नटरंग प्रतिष्ठान* — ७५

लेख

प्रज्ञाचक्षु रंगानुभूति — *भारतरत्न भार्गव* — ८७
हिन्दी नाटक और रंगमंच — *डॉ. हितेन्द्र कुमार मिश्र* — ९१
हयवदन : पूर्णता और अपूर्णता की पड़ताल — *अमरनाथ प्रजापति* — ९६
नन्द किशोर आचार्य के नाटकों की रंगभाषा — *लहरीराम मीणा* — ९९
वरिष्ठ साहित्यकार नाटक क्यों नहीं लिखते — *प्रताप सहगल* — १०४
हिन्दी रंगमंच और महाभोज — *पुँज प्रकाश* — ०

साक्षात्कार

नाटक में भरत वाक्य — *नामवर सिंह से महावीर अग्रवाल की बातचीत* — ११०

रंगजगत

रंगमंच पर उस्ताद इब्राहिम ज़ौक़ — *प्रताप सहगल* — ११३
जब मंच पर साकार हो उठा एक नाट्य प्रयोग — *वैशाली कश्यपी* — ११४

Aditi Mahavidyalaya (University of Delhi), Bawana, Delhi-110 039.

NAAC Cordinator Aditi Mahavidyala Bawana, Delhi-110039

I.Q.A.C. Cordinator Aditi Mahavidyala Bawana, Delhi-110039

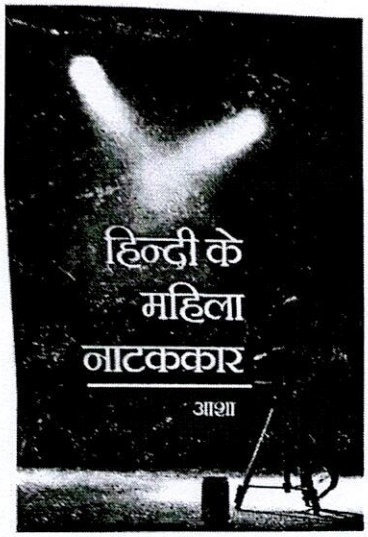

अद्वैत प्रकाशन
adwaitprakashan@gmail.com

हिन्दी के महिला नाटककार आशा

ISBN 978-93-82554-81-3

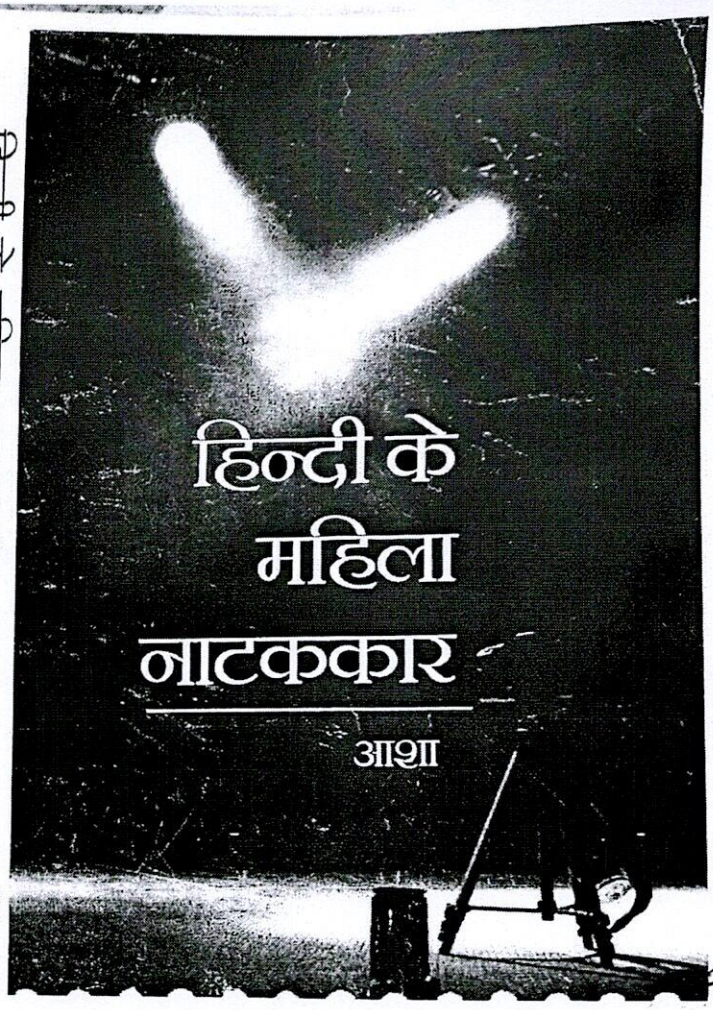

प्रकाशक : अद्वैत प्रकाशन
ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा
दिल्ली-110032

सर्वाधिकार © : आशा

प्रथम संस्करण : 2019
आईएसबीएन : 978-93-82554-81-3
मूल्य : ₹ 350/-
शब्द-संयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032
मुद्रक : राजीव्या ऑफसेट, दिल्ली-110032

HINDI KE MAHILA NATAKKAR
Dr. Asha

Principal,
Aditi Mahavidyalaya
(University of Delhi),
Bawana, Delhi-110 039.

I.Q.A.C.
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

NAAC
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

प्रसाद के नाटकों में रस और द्वन्द्व

(स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, धुवस्वामिनी)

आशा

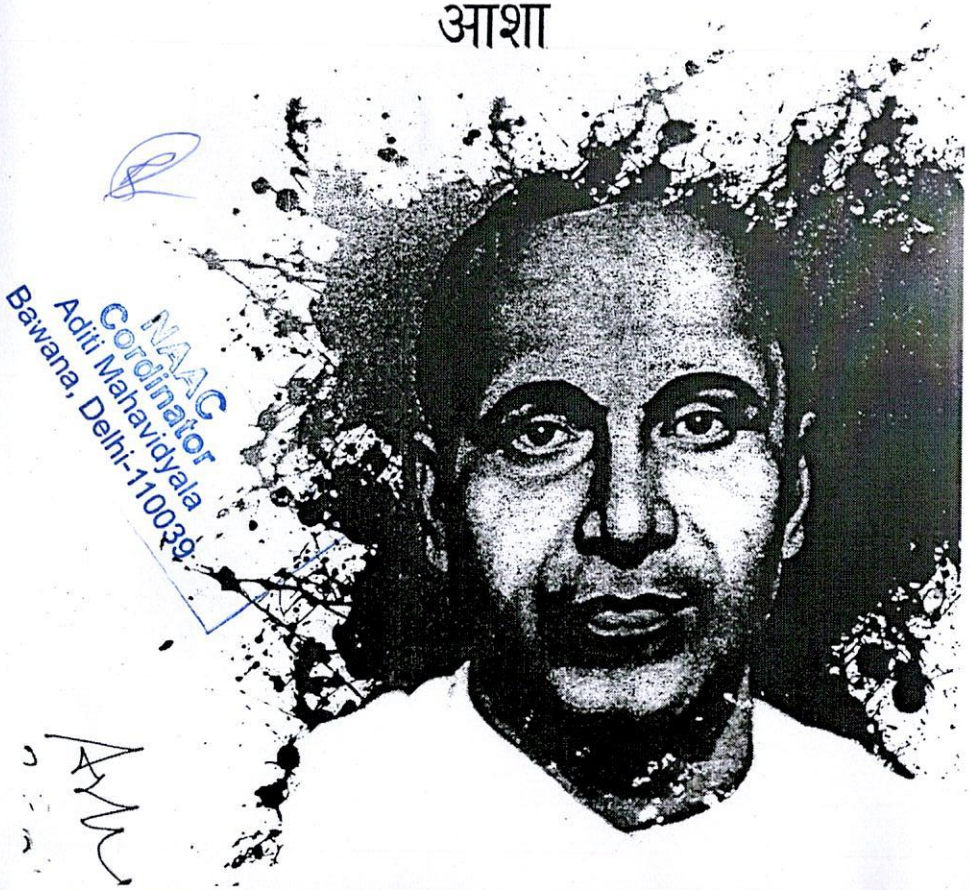

Principal
Aditi Mahavidyalaya
(University of Delhi)
Bawana, Delhi-110 039

NAAC
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039

प्रकाशक : प्रमोद पब्लिकेशन्स
जैन मन्दिर, छिपीवाड़ा
पिलखुआ (गाजियाबाद)
उ.प्र

सर्वाधिकार : लेखिका

संस्करण : 2018

आईएसबीएन : 978-81-904780-4-5

मूल्य : ₹ 350

शब्द-संयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032

मुद्रक : कॉम्पैक्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

PRASAD KE NATKO MEIN RAS AUR DWAND (Criticism)
by Asha

I.Q.A.C.
Cordinator
Aditi Mahavidyala
Bawana, Delhi-110039